मीराबाई

राजेश शर्मा

H
028.5 Sh 23 M

028.5
Sh23M

मीराबाई

राजेश शर्मा

Arun Prakashan, New Delhi

अरुण प्रकाशन, नई दिल्ली

H
028.5
Sh23M

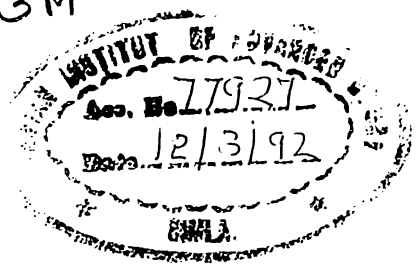

Library IIAS, Shimla
H 028.5 Sh 23 M

00077927

प्रकाशक :
अरुण प्रकाशन
ए-47, अमर कालोनी
नई दिल्ली-110024
आवरण : जोशी मूल्य : दस रुपये
प्रथम संस्करण : 1991

MEERABAI by Rajesh Sharma Rs. 10.00

शहनाई और बाजों की आवाज सुनकर वह नन्हीं बालिका घर के भीतर से भाग बाहर दरवाजे पर आ गयी।

उनकी हवेली के सामने से कोई बारात गुजर रही थी। राजपूती शान से सजे-संवरे दूल्हा घोड़े पर सवार थे। पीछे-पीछे उसी शान से सजे-संवरे बाराती चल रहे थे। आस-पास के घरों से निकल बच्चे-बूढ़े, अधेड़-जवान सभी बारात देखने लगे थे। बारात की शान देख सभी प्रसन्नता से उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

उस बालिका ने बड़े ध्यान से बारात और दूल्हे को देखा। शहनाइयों और बाजों की मधुर आवाज सुन उसका भोला-भाला सुन्दर चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। दो-चार क्षणों तक वह न जाने क्या सोचती-समझती सब कुछ देखती-सुनती रही। फिर अचानक पीछे मुड़ वह घर के भीतर की ओर यह कहते हुए तेज-तेज भागी :

"मां ! मां ! देखो न, कितनी सुन्दर बारात है।"

भीतर पहुंच बालिका ने देखा कि मां भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने बैठी आरती उतार रही है।

वह रुक गयी और तब तक प्रतीक्षा करती रही, जब तक मां द्वारा की जा रही आरती-पूजा समाप्त न हो गयी।

मां ने आरती का थाल नीचे रखा। उसमें जल रही ज्योति पर दोनों हाथ फिराकर मुंह और सिर का स्पर्श किया। फिर मूर्ति के सामने मस्तक झुका दिया।

मां की देखा-देखी बालिका ने भी वही सब किया, जो मां कर

रही थी। आरती-पूजा की सारी क्रियायें समाप्त हो जाने के बाद मां ने बड़े स्नेह से बालिका की ओर देखते हुए पूछा :

"अब बता, क्या कह रही थी, तू !"

"बाहर बारात जा रही थी, मां !" बालिका ने कहा।

"किसी का विवाह होगा। बारात वहीं जा रही होगी।" मां ने मुस्कराते हुए कहा—"इसमें आश्चर्य और पूछने की भला क्या बात है, बिटिया रानी ?"

"पूछने की कोई बात नहीं !"

"हां, रानी बिटिया।" मां ने फिर कहा—"समय आने पर सभी का ब्याह होता है। सभी लड़कियों के द्वार पर बारात सजा कर दूल्हा उन्हें ब्याहने के लिए आया करता है इसी प्रकार बाजे-गाजे और शहनाइयां बजाते हुए—क्यों ?" दो-चार क्षणों तक बालिका के उत्सुकता और प्रश्न भरे चेहरे को देखते रहने के बाद मां ने लाड़ भरे स्वर में फिर कहा— "तेरा भी तो ब्याह होगा न एक दिन, मेरी नन्हीं गुड़िया।"

"मेरा भी ब्याह होगा !" पता नहीं क्या सोचते हुए बालिका ने मां से झट अगला प्रश्न कर डाला—"मेरा ब्याह किसके साथ होगा, मां ?"

"तेरा ब्याह किस से होगा···?" सुनकर मां का चेहरा अचरज से खिंच गया। वह सोच में डूब गयी।

"बताओ न, मां !" बालिका ने हठीले पर लाड़ भरे स्वर में बताने का आग्रह किया।

"अरी, अभी क्या बताऊं। समय तो आ ले अभी तेरे ब्याह होने का ! अभी तो तू इत्ती-सी नन्हीं गुड़िया जैसी ही है।" मां ने दोनों हाथों से उसके बहुत छोटे होने का संकेत किया।

"नहीं, यों नहीं, मां !" बालिका ने हठ कर, अड़ते हुए फिर कहा—"बताओ न, मां ! मेरा दूल्हा कौन होगा ?"

बालिका का हठ देख मां असमंजस में पड़ गयी। वह उसे बतावे भी तो क्या ? अभी तो वह बहुत छोटी है। बड़ी होने पर उसके लिए उचित एवं योग्य घर-वर की तलाश होगी, तब कहीं जाकर ब्याह होगा।

"बताती क्यों नहीं, मां !" बालिका ने फिर हठीले स्वर में पूछा। रोना-सा स्वर बनाते हुए कहा—"बताओ भी मां, मेरा दूल्हा कौन होगा ?···बताइये न···बताइये न···"

बाल-हठ के सामने मां चक्कर में पड़ गयी। अब क्या बताये, कैसे समझाये ? उसने नजर घुमाकर चारों ओर देखा। उसकी नजर भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति पर पहुंच अचानक रुक गयी। अचानक उसे कुछ सूझ गया। प्रसंग को टालने के लिए उसने भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति की तरफ इशारा करते हुए कहा :

"तेरा ब्याह तो इस गोवर्धनधारी भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति से होगा। यही तेरे दूल्हा हैं।"

"ये—ऐ !" बालिका ने आश्चर्य से एक बार मां की तरफ देखा और फिर अपनी ओढ़नी से सिर को अच्छी तरह ढकते हुए भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति की तरफ एकटक नजर से देखने लगी···निरन्तर देखती रही। कई क्षणों बाद धीरे-से फुसफुसाई—"तो यह गिरधर नागर मेरे दूल्हा हैं, मां।"

कहकर भक्ति-भाव से बालिका ने झुककर मूर्ति को प्रणाम किया। दोनों हाथों से मूर्ति के चरण छू अपने माथे और मांग से से छुआ दिये। फिर धीरे से मां से कहा :

"आज मेरा भी ब्याह हो गया, मां !"

"मीरा—आ !" सुनकर आश्चर्य से मां का स्वर खिंच गया। कई क्षणों तक वह अपनी अबोध बालिका के चेहरे पर उमड़ रहे दृढ़ता के भाव को देखती रही। फिर कहा—"यह तू क्या कह रही है मीरा बिटिया ?"

"हां, मां !" मीरा बालिका ने श्रीकृष्ण की मूर्ति की तरफ संकेत कर फिर भक्ति-भाव से कहा—"यह मोर-मुकुट धारण करने वाला गिरधर नागर ही मेरा पति है ! मैं इसकी राधा हूं··· जनक-जन्मान्तरों की संगिनी राधा रानी···राधा···" और उसने आंखें मूद लीं। उसके हिलते हुए होंठ बराबर कहते रहे—

"जाके सिर मोर-मुकुट, मेरा पति सोई···सोई···।"

"मीरा—आ ! मीरा बेटी !!"

मां चिल्ला-चिल्लाकर उसे पुकारती रही और वह अपने ही ध्यान में मग्न एक ही बात गुनगुनाती गयी—

"मेरा पति सोई···जाके सिर मोर-मुकुट···।"

मीरा !

जी हां, इस बालिका का नाम मीरा बाई ही था। वही मीरा, जो परम कृष्ण-भक्त थी और जिसके रचे भक्ति-प्रेम से भरे पद आज भी बड़े भाव से गाये जाते हैं।

मीरा का जन्म मेड़ता नामक स्थान के अन्तर्गत बसे 'कुड़की' गांव में हुआ था। यह स्थान जोधपुर राज्य के अन्तर्गत आता है। अपने समय के प्रसिद्ध राजपूत सरदार राव दूदाजी के चौथे बेटे राव रत्नसिंह मीरा के पिता थे। अपने पिता की इकलौती सन्तान मीरा का जन्म सम्वत् 1573 (सन् 1516 ई०) विक्रमी में हुआ था। मीरा के जन्म के कुछ वर्ष बाद ही महाराणा संग्रामसिंह की ओर से बाबर के साथ लड़ते हुए पिता राव रत्नसिंह का देहान्त हो गया था। मीरा के चाचा और चचेरे भाई राव वीरमदेव और राव जयमल इससे विशेष स्नेह करते थे। राव जयमल अपने दादा राव दूदाजी के समान ही वैष्णव भक्त थे। राव जयमल की गिनती आज भी परम भक्तों में की जाती है। दादा, चाचा, चचेरे भाइयों और माता की देख-रेख में ही नन्हीं मीरा का लालन-पालन हो रहा था।

जिसने भी सुना, सन्न-सा होकर रह गया।

बालिका मीरा अपनी मां कुसुम कुंवर के शव से लिपटकर जार-जार रोने लगी। चारों ओर कुहराम मच गया। अपनी विधवा पुत्र-वधू की अचानक मृत्यु का समाचार सुनकर मीरा के दादा राव दूदाजी मेड़ता से कुड़की गांव भागे आये। चाचा राव वीरनदेव और चचेरे भाई राव जयमल भी मेड़ता से कुड़की गांव आ गये।

केवल छः-सात वर्षों की नन्हीं बालिका मीरा ने रो-रोकर अपना बुरा हाल कर लिया था। उसकी एक मात्र सहेली मिथुला ने दादा राव दूदाजी की सहायता से बड़ी कठिनाई से उसे सम्हाला। राव जयमल ने समझाया-बुझाया और उसे मां के शव के पास से हटा दिया गया।

वहां से हटकर मीरा घर के भीतर श्रीकृष्ण की उस मूर्ति के सामने जा बैठी, जिसकी पूजा उसकी मां प्रतिदिन लगभग हर समय किया करती थी। वह सजल आंखों से मूर्ति की ओर देखने लगी—देखती रही। सहेली मिथुला उसके साथ लगी रही।

उधर मीरा के दादा राव दूदाजी और चचेरे भाइयों ने मिलकर मीरा की मां कुसुम कुंवर का अन्तिम संस्कार किया। परिवार में कई दिनों तक गहरे शोक का वातावरण छाया रहा। जब सभी प्रकार के संस्कार सम्पन्न हो गये, तो घर के बड़े सदस्यों को अनाथ मीरा के लालन-पालन की चिन्ता सताने लगी।

"अब मेरी नन्ही बिटिया मेरे साथ रहेगी।"

एक दिन सभी परिवार-जनों की उपस्थिति में राव वीरमदेव ने कहा। सुनकर नन्ही मीरा हुमुक-हुमुक कर रोने लगी:

"हाय! मां! बापू! मेरा अब कोई भी नहीं रहा।"

"यह क्या कहती है, बेटी!" राव दूदाजी (दादा) ने बड़ी मुश्किल से उसे सम्हालते हुए कहा—"हम सब तो हैं न, रानी

बिटिया !" फिर उन्होंने श्रीकृष्ण की मूर्ति की तरफ संकेत करते हुए कहा—"सारे संसार के माता-पिता यह जो हैं तुम्हारे और हम सब के सिर पर। फिर रोने की क्या बात है।"

"हाँ, मीरा ··मेरी नन्ही बहन !" राव जयमल ने अपने दादा की बात का समर्थन करते हुए श्रीकृष्ण की मूर्ति की ओर देखकर फिर से कहा—"जिसके सिर पर इनका हाथ रहता है, वह भी कभी अनाथ हो सकता है इस संसार में।"

मीरा बड़े ध्यान से एकटक भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति की ओर देखने लगी। कई क्षणों तक देखती रही, फिर सहसा बोल उठी :

"उस दिन मां ने इस मूर्ति की ओर इशारा करके कहा था, भैया, कि यही मेरे पति हैं। आज आप और दादाजी कह रहे हैं कि मेरे माता-पिता भी हैं। भला यह कैसे हुआ।"

"यह कैसे हुआ।" दादा राव दूदाजी ने अचकचा कर अपनी पोती मीरा की तरफ देखा। फिर मुस्कराते हुए कहने लगे—"यह तो सारे संसार के पति, माता-पिता, भाई-बन्धु सभी कुछ हैं, बेटी। इनका प्रेम ही सबके जीवन का सच्चा धन हुआ करता है।"

"अच्छा—आ !" मीरा ने भोले भाव से दादा और भाइयों की तरफ देखते हुए फिर कहा—"तो यही मेरे सब कुछ हैं न।"

"हां, बेटी, हां !" भाई और दादा ने समर्थन किया।

"तू भी सुन रही है न, मिथुला !" नन्ही मीरा ने पास ही खड़ी अपनी सहेली मिथुला की ओर देखते हुए कहा—"यही मेरे पति, माता-पिता और भाई-बन्धु सभी कुछ हैं।"

मिथुला ने भी भोले भाव से सिर हिला दिया।

मीरा झट से जमीन पर घुटनों के बल बैठ श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने झुक गयी। धीरे-धीरे वह दोनों हथेलियां करताल की की तरह बजाते हुए वही गीत गाने लगी, जो उसकी मां आरती-पूजन में गाया करती थी।

दादा राव दूदाजी, चाचा राव वीरमदेव और चचेरे भाई रावौरजयमल तथा सहेली मिथुला बड़े ध्यान से वह सब देखने-सुनने लगे।

उसको मस्त देख, राव दूदाजी ने मिथुला को पास बुलाकर उसके कान में कुछ कहा। सुन-समझकर वह मीरा के पास पहुंच उसके कन्धे हिलाती हुई बोली :

"उठ सखि ! अब बागीचे में चलकर खेलेंगे।"

"खेलेंगे।" मीरा ने गर्दन घुमाकर मिथुला की तरफ देखते हुए कहा—"वहां यह सांवरिया (श्रीकृष्ण) भी हमारे साथ खेलने आयेंगे क्या, मिथुला ?"

मिथुला ने दादाजी की तरफ देखा। उनसे इशारा पाकर बोली :

"हां-हां, चल। वहां यह भी हम लोगों के साथ खेलने आयेंगे। तू चल तो सही मेरी अच्छी सहेली।"

"तब तो जरूर चलो।"

और उठकर वह गम्भीर भाव से मिथुला का हाथ थाम खेलने के लिए बाग की तरफ चली गयी।

दादा और भाई उसे जाते देखते रहे।

कई क्षणों तक कोई कुछ न बोला। फिर धीरे-धीरे अपने दोनों पौत्रों की ओर देखकर राव दूदाजी ने कहा :

"अभी एकदम नादान बच्ची है। इसकी देख-भाल की बहुत जरूरत है। भगवान की कृपा से इस नन्हीं आयु में ही मीरा के मन में भगवान-प्रेम का जो सपना जाग उठा है, वह टूटना नहीं चाहिए।"

"वह तो है ही, दादाजी।" राव जयमल ने कहा।

"जयमल बेटे, भगवत्-भक्ति में लीन रहते हुए भी तुम्हें वीरम-देव के साथ मिलकर राज-काज देखने पड़ते हैं। अतः मीरा

बिटिया को हम अपने साथ मेड़ता लिये जाते हैं। वहीं रहेगी हम सब के साथ। हम स्वयं इसकी सारी व्यवस्था और देख-रेख किया करेंगे।"

"जैसी आपकी इच्छा और आज्ञा, दादाजी।" राव वीरमदेव और जयमल दोनों ने मस्तक झुकाते हुए कहा।

मीरा को जब पता चला कि उसे दादाजी के साथ मेड़ता जाना पड़ेगा, तो पहले तो वह न जाने की बात पर अड़ गयी। बहुत समझाने-बुझाने के बाद जाने के लिए राजी हो पायी। जाने की तैयारी करते समय उसने दादा से कहा :

"यह मूर्ति भी हमारे साथ जायेगी न, दादाजी ?"

"हां, बिटिया !" दादा बोले—"तुम यदि चाहती हो तो इस भगवान के विग्रह (मूर्ति) को भी साथ ले चलो।"

"बहुत अच्छा, दादाजी !" मीरा ने प्रसन्नता से उछलते हुए फिर कहा—"और मेरी सहेली मिथुला भी तो मेरे साथ ही रहेगी न।"

"हां, बेटी ! मिथुला भी तुम्हारे साथ ही रहेगी।" दो क्षण बाद वे फिर बोले—"पर मिथुला से भी तो पूछ लो पहले।"

"मैंने पूछ लिया है, दादाजी।" मीरा ने उत्तर दिया—"उसने तो जीवन भर मेरे साथ रहने की प्रतिज्ञा की है।"

"तो क्या, अपने ससुराल भी उसे साथ ही ले जाओगी, बिटिया ?" अचानक दादाजी के मुंह से निकल गया।

"कहा न जीवन भर साथ रहेगी।"

मीरा की बात का उनसे अब कोई उत्तर न बन पड़ा। वे चुपचाप उसके भोले चेहरे की ओर देखते रहे।

और इसके बाद मीरा अपने दादा राव दूदाजी के साथ कुड़की गांव से मेड़ता आ गयी।

मेड़ता में राव दूदाजी ने मीरा की शिक्षा-दीक्षा की पूरी

व्यवस्था कर दी। राव दूदाजी खुद भी वैष्णव संस्कारों वाले भक्त व्यक्ति थे। उनके प्रभाव से मीरा के कृष्ण-भक्त के माता से मिले संस्कार और भी गहरे होने लगे। उनके यहां अक्सर साधु-महात्मा, सन्त और भक्त आते रहते थे। उनका भजन कीर्तन भी होता रहता था। उसे देख-सुन बालिका मीरा एकदम मग्न हो जाया करती। भजन-कीर्तन के आवेश और उत्साह में जब भक्त-गण नाचने-गाने लगते, तो उन्हें देख मीरा के नन्हें पांव भी थिरकने लगते। होंठों पर भजन-कीर्तन की पंक्तियां गूंजने लगतीं।

उसकी रुचियों को पहचान राव दूदाजी ने मीरा के लिए नृत्य-संगीत की व्यवस्था भी कर दी। धर्म-ग्रन्थों का पाठ दे स्वयं उसे पढ़ाया-सुनाया करते। इस प्रकार छोटी आयु से ही मीरा का धर्म-ज्ञान और भक्ति-भाव निरन्तर पक्का होकर बढ़ता ही गया। जब वह साधु-सन्तों और भक्तों की कीर्तन-मण्डली में नाचने और विभोर होकर श्रीकृष्ण के कीर्तन करने लगती, तो उपस्थित लोग एक स्वर में कह उठते :

"यह बालिका तो पिछले जन्म की साक्षात् राधा है—कृष्ण-प्यारी राधा !"

"जन्म-जन्मान्तरों की राधा।"

"भगवान कृष्ण की जन्म-जन्म की भक्त और संगिनी।"

सुनकर मीरा के मन में भी यह संस्कार बैठने लगे कि वास्तव में वह भगवान श्रीकृष्ण की राधा ही है। अतः वह जल्दी ही राधा जैसा ही व्यवहार करने लगी।

एक दिन भजन-कीर्तन बड़े जोर से चल रहा था। भक्त मण्डली आठ-दस वर्ष की मीरा का नृत्य-भजन सुनकर झूमती रही। मंण्डली में उस दिन एक भजनानन्दी साधु भी उपस्थित था। नृत्य-भजन समाप्त होने के बाद उसने अपने झोले से भगवान

'गिरिधर' (श्रीकृष्ण) की मूर्ति निकाल कर मीरा की ओर बढ़ाते हुए कहा :

"लो बेटी ! संसार में केवल तुम्हीं इसको प्राप्त करने और रखने के योग्य हो। लो, अपने गिरिधर गोपाल को।"

विस्मय-भाव से मीरा ने दोनों हाथों से मूर्ति को ग्रहण किया और उसे एक ऊंचे स्थान पर रखकर मस्तक झुका दिया। फिर सहसा वह मस्ती से झूमती हुई नाचने-गाने लगी :

"मैं तो गिरिधर आगे नाची···मैं तो···"

और उस दिन अचानक मीरा के मुख से कविता भी फूट पड़ी। अब वह कृष्ण-भक्ति के भजन-गीत और पद स्वयं रच-रच कर भजन-कीर्तन में भाग लेने लगी।

मारा का जीवन अब हर समय कृष्ण-भक्ति के पद रचते-गाते ही बीत रहा था। अपने को राधा मान वह हर समय, सोते-जागते कृष्ण के ही सपने देखती रही। एक सुबह जैसे ही मीरा सोते से उठी, अपनी सहेली मिथुला को बुला कर कविता के स्वर में बोली :

"माई म्हाणे शुपणा मां परण्या दीणानाथ।"

(अर्थात् सपने में दीनानाथ श्रीकृष्ण के साथ मेरा विवाह सम्पन्न हो गया है।)

"यह क्या कहती हो, सखि ?" सुनकर चौंकते हुए सहेली मिथुला ने कहा—"यह सब आखिर तुम्हें होता क्या जा रहा है ?"

"और क्या होना बाकी रह गया है, मिथुला।" और फिर वह कविता के स्वर में ही कहने लगी :

"माई म्हां ने सुपने में, परण गया जगदीस।
सोती को सुपना आविया जी, सुपना बिस्वा बीस।।"

यह सुनकर सहेली मिथुला ने कहा :

"गैली दीखे मीरा बावली, सुपना आल जंजाल।"

तो मीरा अपनी ही कविता की धुन में गाती गई :

"माई म्हाणे सुपनो में, परण गया गोपाल।
अंग-अंग हल्दी में करी जी, सुधे भीज्यो गात।
माई म्हाणे सुपनों में ने, परण गया दीना नाथ॥
छप्पन कोट जहां जानपधारे, दुलहा श्री भगवान।
सुपने में तोरण बांधिया जी, सुपने में आई जान॥
मीरा को गिरिधर मिल्याजी, पूर्व जनम के भाग।
सुपने में म्हांणे परणगया जी, हो गया अचलसुहाग॥"

और भी जाने मीरा अपनी सहेली मिथुला को क्या-क्या कहती सुनाती रही। सुन-सुनकर बेचारी मिथुला चिन्ता में पड़ गई। दादा राव दूदाजी ने मिथुला को समझा रखा था कि मीरा की भक्ति-भावना तो ठीक है, पर इसका मतलब यह भी नहीं कि वह वैरागिन ही बन जाए। अत: संसार से उसे विरक्त न होने देने का ध्यान रखे।

अब जब प्रतिदिन मीरा सहेली मिथुला के सामने सपनों और सपनों में होने वाले कृष्ण-मिलन की ही चर्चा करती रहने लगी, तो मिथुला बहुत अधिक चिन्तित हो उठी। एक दिन मीरा जब गिरिधर की मूर्ति के सामने बैठकर भक्ति में लीन थी, मिथुला राव दूदा जी के पास चुपके से जाकर बोली :

"मीरा तो अब पूरी वैरागिन बनती जा रही है, दादाजी !"

"क्या कहती हो, मिथुला बेटी !" राव दूदाजी ने सुनकर चौंकते हुए कहा—"अब नया भी क्या हो गया ?"

"वह कहने लगी है कि मेरा ब्याह तो गिरिधर गोपाल के साथ हो गया है, दादा जो।" मिथुला ने बताया।

"वह कैसे ?"

तव मिथुला ने दादा जी को मीरा के सपना देखने की सारी घटना और रोज-रोज की वातें कह सुनाईं।

"हूं—ऊं !" कहकर दादा राव दूदा जी गम्भीर हो गए। कुछ क्षण बाद बोले—"तुम उसका ध्यान रखो, बेटी। मैं देखता हूं कि अव इसका क्या प्रवन्ध हो सकता है।

मिथुला के जाने के वाद राव दूदा जी ने अपने बेटे राव वीरमदेव और पोते राव जयमल को बुलाया। मिथुला से सुनी सारी वातें उन्हें बताने के वाद कहा :

"मीरा बेटी की आयु अव तेरह वर्ष की हो चुकी है। मैं सोचता हूं, अब कोई योग्य वर खोज कर इसका विवाह कर देना चाहिए। अन्य कोई उपाय नहीं दीखता।"

"आप ने ठीक सोचा है, पिताजी।" राव वीरमदेव ने कहा—"घर-गृहस्थी में पड़ कर ही मीरा को सपनों की दुनिया से छुट-कारा मिल सकता है।"

"यही उचित है।" राव जयमल ने भी समर्थन किया।

"तो फिर इसके योग्य वर की तलाश शुरू कर दो।" राव दूदा जी बोले—"अब जरा-सी देर करना भी ठीक नहीं।"

और कुल तेरह वर्ष की किशोरी मीरा के लिए योग्य वर की खोज होने लगी। पुरोहित और नाई इधर-उधर के रजवाड़ों, सामन्तों-सरदारों के यहां मीरा की आयु के अनुरूप योग्य वर की खोज में जुट गए। कुछ ही दिन वाद मेवाड़ के महाराणा सांगा के वड़े लड़के कुंवर भोजराज के साथ मीरा का रिश्ता पक्का कर दिया गया। जब विवाह का दिन भी निश्चित हो गया, तव सहेली मिथुला के द्वारा मीरा को वता दिया गया कि अब जल्दी ही मेवाड़ के बड़े राजकुमार भोजराज के साथ उसका विवाह होने जा रहा है। सुनकर मीरा चौंक उठी। वह कविता के स्वरों में सखी मिथुला को समझाते हुए बोली :

"थांने कांई कांई कह समझाऊं, म्हारा बाला गिरधारी।
पूर्व जनम की प्रीत हमारी, नहिं जात निवारी।
सुन्दर वदन जोवते सजनी, प्रीत भई छे भारी।
म्हांरे घरे पधारो गिरधर, मंगल गावें नारी।
मोती चौक पुराऊं वाल्हा, तन मन तो पर वारी।
म्हारो सगापण तो सूं सांवलिया, जुगसूं नहीं विचारी।
मीरां कहे गोपिन को वाल्हो, हमसूं भयो ब्रह्मचारी।
चरण सरण है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी॥"

मिथुला ने मीरा के मन की दशा और भावना जाकर दादा राव दूदा जी से समझा दी। वे अत्यधिक चिन्तित हो उठे। पर अब तो विवाह का दिन भी निश्चित हो चुका था। मीरा के पिता महाराणा सांगा के साथ ही कान्हवा के मैदान में मुगल बाबर के विरुद्ध लड़ते हुए मारे गए थे, अतः वे मीरा को अपनी पुत्रवधू बनाने पर बहुत प्रसन्न थे। अब उन्हें नाराज भी तो नहीं किया जा सकता था। अतः दादा राव दूदा जी, चाचा राव वीरमदेव और चचेरे भाई राव जयमल ने बारी-बारी से मीरा को समझाया कि :

"वंश और जाति-परम्परा की रक्षा के लिए प्रत्येक राजपूतानी को विवाह करके ससुराल जाना ही पड़ता है।"

राव जयमल जो स्वयं भी वैष्णव भक्त और कवि थे, उन्होंने अपनी लाड़ली बहिन को समझाते हुए कहा :

"तुम्हारे भक्ति-भाव में विवाह के बाद भी कोई विघ्न नहीं पड़ेगा, बहिन। राणा-परिवार स्वयं बड़ा श्रद्धालु और भक्त है।"

आखिर सभी के दवाव में आकर मीरा ऊपरी मन से इस विवाह कर्म के लिए राजी हो गई। पर मन में गाती रही :

"मैं तो गिरिधर के घर जाऊं।
गिरधर म्हांरो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।"

और इस प्रकार केवल तेरह वर्ष की आयु में बालिका-वधू बनकर मीरा मेड़ता से चित्तौड़ के राजभवन में आ गई। उसकी सहेली मिथुला भी उसके साथ ही आई।

दो

"मेड़तणी राणी के तो लक्षण ही न्यारे हैं।"

"सास-ससुर, देवर-ननद किसी की भी चिन्ता-परवाह वह नहीं करती। यहां तक कि राणा ससुर से पर्दा भी नहीं किया उसने।"

"हर समय श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने बैठ ध्यान मग्न रहती है।"

"खुले मुंह मूर्ति के सामने नाचने-गाने भी लगती है यह मेड़तणी राणी, अब तुम्हें क्या बतावें।"

"चितौड़ के राजभवन को तो इसने कीर्तन-घर बना दिया है।"

"हर समय साधु-सन्त, योगी-वैरागी जुटे रहते हैं राज भवन में।"

"अपने पति कुंवर भोजराज के साथ एक बार भी बात तक नहीं की इस मेड़तणी राणी ने।"

"अच्छा विवाह किया है कुंवर ने।"

"इस मेड़तणी राणी को राजभवन में लाकर अपने घर-बार को भी मन्दिर और साधु-आश्रम में बदलना पड़ गया बेचारों को।"

"और बड़े राणा सॉ (महाराणा सांगा या संग्रामसिंह) भी

तो कुछ नहीं कहते। कोई उपाय नहीं करते।"

मेवाड़ के बड़े राजकुमार भोजराज के साथ व्याही जाकर, मीरा के चितौड़ में आने के अगले दिन से ही वहां उस प्रकार की चर्चाएं होने लगीं। मीरा क्योंकि मेड़ता की निवासिनी थी, इस कारग मेवाड़ में उसे सभी 'मेड़तणी राणी' (अर्थात् मेड़ता से आई रानो) कहकर पुकारते थे। मीरा भजनानन्दी साधु और माता द्वारा दी गई भगवान कृष्ण की मूर्तियां भी अपने ससुराल में साथ लेकर आई थी। उसने आते ही अपने भवन में वे मूर्तियां स्थापित कर दीं और उन्हीं की पूजा, भजन-कीर्तन में मग्न रहने लगी। पति कुंवर भोजराज आते और उसे भजन-पूजन में मग्न देखकर चुपचाप लौट जाते। इस प्रकार चारों ओर मीरा की बदनामी होने लगी। ससुराल-पक्ष के प्रायः सभी सगे-सम्बन्धी उससे नाराज रहने लगे।

मीरा के ससुर राणा सांगा अक्सर राजनीति और युद्ध-कार्यों में व्यस्त रहते। उन्हें मुगलों, पठानों, तुर्कों और कुछ विरोधी राजपूतों से भी सन्धि-विग्रह में व्यस्त रहना पड़ता। मीरा के व्यवहार से वे दुखी तो अवश्य होते, पर एक तो अपनी वैष्णव भावना और दूसरे समयाभाव के कारण कुछ कर या कह न पाते। पति भोजराज स्वभाव से ही बहुत अधिक नम्र और चुपचाप रहने वाले व्यक्ति थे। अतः चुप ही रह जाते। सास-ननद मीरा को अक्सर समझाती रहतीं, घर-गृहस्थी की ओर मीरा का मन लगाने का प्रयत्न करतीं, पर उसके मन पर तनिक भी प्रभाव न पड़ता। वह भक्ति-भाव में लीन रह कृष्ण की मूर्ति और कीर्तन-मण्डली के सामने खुले मुंह, स्वतंत्र रूप से नाचती-गाती रहती।

कुछ ही दिनों में मीरा के इस व्यवहार की चर्चा सारे मेवाड़ में होने लगी। लोग तरह-तरह की बातें बनाने लगे। बदनामी

बढ़ती गई। उसके साथ घर-परिवार के सदस्यों का विरोध और क्रोध भी बढ़ता गया। यह देख साथ आई मीरा की बाल-सखी मिथुला ने एक दिन उसे समझाते हुए कहा :

"देखो, मीरा बहन, अब तुम कुड़की गांव और मेड़ता की छोटी-भोली लड़की नहीं रह गई हो···"

"अब क्या हो गई मैं, मिथुला ?" मीरा ने उसकी बात बीच में ही काटते हुए कहा—"मैं तो जैसे पहले थी, वैसी ही अब भी हूं।"

"नहीं सखी, अब वह बात नहीं रह गई।" मिथुला ने समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा—"अब तुम मेवाड़ के महाराणा वंश की कुलवधू हो। तभी तो सभी तुम्हें मेड़तणी राणी कहकर पुकारते हैं। अब तुम्हें वंश की मर्यादा और लोक लाज का पालन करना चाहिए। घर-परिवार के लोग जैसा चाहते हैं, वैसा करना-रहना चाहिए।"

"और मेरे गिरिधर गोपाल ?"

"अब तुम्हारे सब-कुछ तुम्हारे पति और ससुराल के सास ससुर, ननद-देवर ही हैं, इनका ध्यान रखना चाहिए।"

मिथुला की बातें सुन मीरा कई क्षणों तक गम्भीर रही। फिर धीरे-धीरे अपनी कविता के स्वर में गाने लगी :

"हेली, म्हांसू हरि बिनि रह्यो न जाय।
सास लड़ै मेरी ननद खिजावै, राणा रह्या रिसाय।
पहरो भी राख्यो चौकी विठारयो, ताला दियो जड़ाय॥
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यूं छोड़ी जाय।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, और न आवे म्हांरी दाय॥"

सुनकर सहेली मिथुला एकटक उसकी ओर देखती ही रह गई। कुछ क्षण बाद उसने धीरे से फिर कहा :

"अभी तो इतना ही हो रहा है, आगे और भी बहुत कुछ हो

सकता है, रानी वहन। मैं तो सब सह लूंगी तेरी खातिर, पर तू···'' और आगे वह कुछ न कह सकी।

मियुला के समझाने-बुझाने का, ससुराल वालों के डांटने-फटकारने और पहरे विठाने का भी मीरा के मन पर कोई असर न पड़ा। उसकी भक्ति-भावना के क्रम में कोई बाधा न पड़ी। ससुराल के सदस्यों ने जब राजमहल में साधु-सन्तों का प्रवेश बन्द कर दिया, तो मीरा मन्दिरों में जाने लगी। और भी जहां कहीं कोई कथा-कीर्तन होता, वहां पहुंच जाती। वहां सबके सामने अपने रचे पद गा-गा कर कीर्तन-भजन करती। श्री कृष्ण की मूर्ति के सामने एकदम मुक्त भाव से नाचने लगती और कई-कई घण्टे नाचती-गाती रहती। उपस्थित लोग भी और सब कुछ भुलाकर, औरों को सुनना-देखना वन्द कर केवल मीरा को ही देखते-सुनते।

इस प्रकार मीरा की प्रसिद्धि और बदनामी दोनों ही दूर-दूर तक फैलती गई। घर-परिवार के सदस्य विशेष चिन्तित हो उठे। सास-ननद की चिन्ता और क्रोध और भी बढ़ गए। पति भोजराज के साथ मीरा का कोई समझौता न हो सका।

मेवाड़ का राणा-परिवार कृष्ण-भक्ति का विरोधी तो न था, पर वंश-परम्परा से वह भगवान एकलिंग (भगवान शिव) और गौरी माता (पार्वती देवी) का उपासक था। मीरा को भगवान श्रीकृष्ण की सुन्दर और मोहिनी मूर्ति के प्रति आसक्त देखकर घर-परिवार के सदस्यों ने आपस में सोच-विचार किया, कि मीरा का ध्यान श्रीकृष्ण की ओर से विमुख कर, कुलदेवी पार्वती की ओर लगाया जाए। वर्ष में एक दिन वहां गौरी-(पार्वती) पूजन का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। राज-परिवार और प्रजा की सभी नारियां यह उत्सव मिलकर मनाया करती थीं। अत: इस बार जब गौरी-पूजन का उत्सव

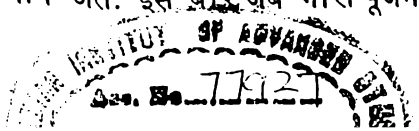

और अवसर आया, तो मीरा की सास ने उसे प्यार से समझाते हुए कहा :

"कल गौरी-पूजा का उत्सव है। तुम्हें भी पूजा में भाग लेना है।"

"गौरी-पूजा !" सुनकर मीरा दो-चार क्षण मौन रही। फिर धीरे-धीरे गुनगुनाते हुए बोली—"गिरिधर गोपाल ही मेरे गुरु, देवता, भगवान सब कुछ हैं। मैं किसी और की पूजा नहीं कर सकती।"

"क्यों ?" सास ने कहा—"और सभी नरियां भी तो गौरी की पूजा करेंगी, फिर तुम क्यों नहीं, बहू ? गौरी-पूजा करने से मनुष्य के मन की सारी इच्छाएं पूरी हो जाती हैं। फिर और किसी की पूजा करने की आवश्यकता ही क्या है ?"

"मेरे परम स्नेही तो गिरिधर गोपाल ही हैं, मां जी ! उनके रहते मैं गोरी, अग्नि आदि और किसी की पूजा का ध्यान ही मन में नहीं ला सकती। आप मुझे बार-बार न कहें।" मीरा ने दृढ़ता से कहा। वह फिर बोली—"भगवान गिरिधर गोपाल ही मेरे बाल-स्नेही हैं, और कोई नहीं।"

"बाल-स्नेही—हूं: ! सास ने जरा तुनक कर कहा—"यह भक्ति पूजा, भजन-कीर्तन की बातें साधु-सन्तों का काम है, उन्हीं को शोभा देती है। तुम तो राठोर वंश की बेटी और राणा के सिसौदिया (सूर्य) वंश की बहू हो। भगवान ने तुम्हें राजपाट सब-कुछ दे रखा है, तुम्हें क्या जरूरत है ये सारे बखेड़े पालने की बहू ?"

"जो राज करना चाहते हैं, उन्हें राज करने दें, मां जी !" मीरा ने नम्रता से उत्तर दिया—"मैं तो अपने गिरिधर गोपाल और उसके भक्तों की दासी हूं। साधु-सन्तों की सेवा, भगवान का भजन-कीर्तन--प्रभु से मिलने की आशा में मेरा राज-पाट और

सब-कुछ मात्र इतना ही है।"

"तुझे जरा भी लाज-शर्म नहीं।" सुनकर सास मां ने तनिक क्रोध से कहा --"तुम्हारे इन आचरणों के कारण तुम्हारे मायके और ससुराल के सभी लोगों की बदनामी हो रही है, लाज जा रही है, लोग क्या-क्या बातें बना रहे हैं, तनिक भी चिन्ता या सोच नहीं तुझे इस सब की—क्यों ?"

"चिन्ता और सोच ?" मीरा ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—"आप कह क्या रही हैं, मां जी ! मैं क्या किसी की चोरी करती हूं, चुगली और निन्दा करती हूं ? मैं तो भक्ति और पुण्य के पवित्र मार्ग पर चल रही हूं। इस पर भी अगर संसार के लोग कुछ कहते हैं, तो कहते रहें। मुझे मायके या ससुराल की चिन्ता-भावना नहीं, मुझे तो बचपन से ही जो गोविन्द मिले हैं, केवल उन्हीं की चिन्ता है।"

बेचारी सास माथा पीट कर रह गई।

मीरा ने अपने नियमित मार्ग पर चलना जारी रखा :

एक-डेढ़ वर्ष इसी प्रकार बीत गया।

मीरा ने न तो पति के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध ही स्थापित किया और न भक्ति की राह पर चलना छोड़ा। उसका नित्य कर्म—मन्दिर में जाना, कृष्ण की मूर्ति के सामने नाचना-गाना, साधु-सन्तों का सत्संग करना आदि सभी-कुछ ज्यों का त्यों चलता रहा।

उधर महाराणा सांगा को निरन्तर युद्धों में जूझना पड़ रहा था। उनके तन पर लगने वाले घावों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी। मीरा के दादा राव दूदा जी, चाचा वीरमदेव और चचेरे भाई राव जयमल भी युद्धों में उनके साथ ही रहा करते

थे। ये लोग भी मीरा के व्यवहार से दुखी तो अवश्य थे, पर बचपन से ही उसके स्वभाव और व्यवहार से भली-भांति परिचित होने के कारण न तो उसे कुछ कह पाते और न कृष्ण-भक्ति से रोक ही पाते। कई बार कुछ लोग इनके मुंह पर भी मीरा द्वारा लोक-लाज की परवाह न करने की बात कह देते, जिसे सुन ये लोग चुप ही रह जाते। हां, राणा-परिवार के घर में मीरा के व्यवहार की चर्चा दुख भरे स्वरों में अवश्य होती रहती।

महाराणा सांगा की बड़ी लड़की पद्मावती का विवाह तो हो चुका था, पर छोटी लड़की कुंवरी ऊदा बाई अभी तक कुंवारी थी। वह अपनी भाभी मीरा से स्नेह तो बहुत करती थी, पर उसके व्यवहार ने घर के अन्य सदस्यों के समान ननद ऊदाबाई को भी बहुत खिन्न कर दिया था। वह अक्सर मीरा को समझा-बुझा कर, भय दिखा कर घर-गृहस्थी की ओर मोड़ने का प्रयत्न करती रहती, पर मीरा पर कोई प्रभाव न पड़ता। मीरा के व्यवहार ने उसके पति कुंवर भोजराज को भी काफी खिन्न और उदास कर दिया था। अपनी मां और पिता आदि के सामने वह कई बार अपनी व्यथा प्रगट कर चुके थे। सास-ससुर आदि सभी चिढ़-कुढ़ कर रह जाते। अतः उन सबकी सलाह से ननद ऊदाबाई ने अपनी भाभी मीरा को समझाने का निश्चय किया। एक दिन समय पाकर ऊदा बाई ने मीरा से कहा :

"भाभी ! तुम्हें कितनी बार समझाया, पर तुम मानती ही नहीं।"

"किस बात के लिए समझाया ?" मीरा ने प्रश्न किया।

"यही साधुओं-सन्तों के पास न जाने, सबके सामने मुंह खोल कर नाचने-गाने से, और क्या ?" ऊदाबाई ने उत्तर दिया।

"साधु-सन्तों से सत्संग तो कोई बुरी बात नहीं।" मीरा ने कहा—"फिर मैं नाचती-गाती तो अपने गिरिधर-गोपाल के सामने

हूं, किसी पर-पुरुष के सामने तो नहीं।"

"साधु-सन्त और कीर्तन करने वाले पर-पुरुष नहीं क्या ?"

"मेरे लिए तो गिरिधर गोपाल के अतिरिक्त संसार में और कोई पुरुष है ही नहीं, ननद रानी।"

"भाभी !" सुनकर ननद ऊदाबाई को तनिक क्रोध हो आया बोली—"कोई पुरुष नहीं। हूं: ! तो भैया भोजराज···तुम्हारे पति···वे क्या पुरुष नहीं ?"

"पति ! मेरे पति !" कहती हुई मीरा ने आंखें उठाकर ननद ऊदाबाई की तरफ देखा और फिर गुनगुना उठी :

"मेरो तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर-मुकुट, मेरी पति सोई।।"

"भाभी—ई!" ननद ऊदाबाई ने कुछ चिल्लाते हुए फिर कहा—"राणा पिता, रानी मां और सभी तुम्हारी ऐसी बातों से बहुत अधिक नाराज हैं। चारों ओर राणा वंश की निन्दा हो रही है, कुल को दाग लग रहा है।"

"दाग लग रहा है।" मीरा ने आश्चर्य से कहा—"ऊदा बाई, सयानी होकर भी तुम ऐसी बात कह रही हो।"

"मैं क्या, सारी दुनिया कह रही है, भाभी ! तू तो शर्म-हया छोड़कर साधु-सन्तों के साथ भटकती फिर रही है। बड़े घर में जन्म लेकर भी सबके सामने तालियां बजाकर नाचती-गाती है। ये सब बातें क्या उचित हैं ?"

सुनकर मीरा ऊदाबाई का मुंह देखने लगी। फिर बोली :

"साधू मात-पिता कुल मेरे, सजन सनेही ग्यानी।
सन्त चरण की सरन रैन दिन, सत्त कहत हूं बानी।।"

"हाय, भाभी !" सुनकर दुखी मन से ननद ऊदाबाई ने फिर समझाते हुए कहा—"सिसौदिया वंश का वर (पति) तुझे भाग्य से प्राप्त हुआ है, फिर भी पता नहीं तू कैसी-कैसी बातें करने

लगती है। हमारा कहना मानो और साधु-सन्तों का चक्कर छोड़ कर सुख-चैन से अपने घर में रहो, वाकी सवको भो रहने दो।"

"मैं तो किसी के सुख-चैन में वाधा नहीं डाल रही।" मीरा ने कहा। दो क्षण बाद वह फिर वोली :

"राणां ने समझावो जावो, मैं तो बात न मानी।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, सन्तां हाथ विकानी॥"

हार कर ऊदावाई चली गई।

जब मीरा बाई के व्यवहार में कोई परिवर्तन न आया, वह उसी प्रकार साधु-सन्तों के पीछे भागती रही, तो राजकुमार भोजराज का मन ग्लानि से भर गया। वह वहुत उदास और दुखी रहने लगे। घर-परिवार के सदस्य अत्यधिक चिन्तित रहने लगे। बहुत सोच-विचार के वाद इस निर्णय पर पहुंचे कि राज भवन में ही भगवान श्रीकृष्ण का एक छोटा मन्दिर बनवा दिया जाए। हो सकता है, ऐसा होने पर मीरा बाहर के मन्दिर में या कीर्तन मण्डलियों में जाकर नाचना-गाना छोड़ दे। साधु-सन्त भी राज भवन में सीधे प्रवेश न पा सकेंगे। तब यह भी हो सकता है कि कुछ दिन बाद मीरा का मन घर-संसार में भी लगने लगे।

जल्दी ही राज भवन में ही भगवान श्री कृष्ण का एक छोटा मन्दिर बनवा दिया गया। मन्दिर देख मीरा का मन खिल उठा। वह वहीं पर भजन कीर्तन करने लगी। घर-परिवार के सदस्य जो चाहते थे, वह सम्भव न हो सका। घर में मन्दिर बन जाने पर भी न तो मीरा बाहर जाने से रुक सकी और न राजमहल में साधु-सन्तों का आगमन ही रुक सका। महाराणा सांगा चाहकर भी अपनी पुत्रवधू के साथ कठोर व्यवहार न कर सके। प्रतिबन्ध लगाकर भी बनाए न रख सके। मीरा का घर-बाहर पहले जैसा व्यवहार ही चलता रहा।

इस प्रकार एक-डेढ़ वर्ष और वीत गया।

एक दिन राजभवन में कुहराम मच गया। मीरा के पति कुंवर भोजराज का अचानक स्वर्गवास हो गया। घर-परिवार के सभी सदस्य जार-जार रोने लगे। पर मीरा उस समय भी भगवान कृष्ण की मूर्ति के सामने बैठी गा रही थी :

"म्हारो परनाम वांके विहारी जी।
मोर मुगट माथे तिलक विराज्यो कुंकुम अंकनाकारी जी॥
अधर मधुर धर वंसी वजावे, रीझ-रिझावे ब्रजनारी जी।
या छव देख्यां मोहृयां मीरा मोहन गिरिधर धारी जी॥"

घर की औरतों ने आकर मीरा के हाथों की चूड़ियां तोड़ डालीं, माथे का सिन्दूर पोंछ डाला, पर वह अपनी ही धुन में मस्त गाती रही।

इस प्रकार विवाह के कुछ ही दिन बाद, विवाह होने पर भी कुंवारी बनी रहने वाली मीरा विधवा भी हो गई।

तीन

विधवा हो जाने के बाद मीरा और भी स्वतंत्र हो गई।

अब किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध न मान हर समय अपने सांवरिया (भगवान श्रीकृष्ण) के भजन-कीर्तन में मग्न रहने लगी। उसका मन हरि-दर्शन के लिए और भी अधिक व्याकुल रहने लगा। प्रेम की पीर बढ़ती ही गई। और सबकी आशा छोड़ अब वह गाने लगी :

"मैं तो गिरिधर के पर जाऊं।
गिरधर म्हांरो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं॥

रैण पड़ै तब ही उठि जाऊं, भोर गये उठि आऊं।
रैण दिना वाके संगि खेलूं, ज्यूं त्यूं वाहि रिझाऊं।।
जो पहिरावै सोई पहिरूं, जो दे सोई खाऊं।
मेरी उण की प्रीत पुराणी उण विन पल न रहाऊं।।
जहां बैठावे तितही बैहूं, बेचै तो बिक जाऊं।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर बार-बार बलि जाऊं।।"

एक ओर जहां मीरा की भक्ति की लग्न बढ़ती गई, वहां अब घर-परिवार के सदस्यों का विरोध भी बढ़ता गया। उस युग की एक विधवा साधु-सन्तों, योगियों-भक्तों की मंडलियों के बीच खुले मुंह बैठ कर नाचे-गाए, भजन-कीर्तन करे, भला यह कैसे स्वीकारा जा सकता था? फिर भी कुछ दिनों तक मीरा का जीवन-क्रम इसी प्रकार चलता रहा।

इसी बीच मेवाड़ राज्य की परिस्थितियों में जल्दी-जल्दी परिवर्तन आने लगे। पहले महाराणा सांगा का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद उनके दूसरे बेटे (मीरा के पति कुंवर भोजराज से छोटे) रत्नसिंह मेवाड़ के राणा बने। पर केवल तीन वर्षों तक शासन करने के बाद, शिकार खेलते समय बून्दी राज्य के शासक राव सूरजमल के षड्यंत्र का शिकार होकर मारे गए। तब मेवाड़ के सरदारों ने मिलकर महाराणा सांगा के चौथे बेटे विक्रमादित्य को राजसिंहासन पर बैठाया। विक्रमादित्य राणा सांगा की दूसरी पत्नी जवाहर बाई का बेटा था। बड़ी रानी कर्मवती का बेटा उदय सिंह अभी नाबालिग था, अतः उसे राणा न बना विक्रमादित्य को बना दिया गया। विक्रमादित्य की आयु उस समय मात्र बीस वर्ष की थी। वह स्वभाव का बड़ा छिछोरा, कायर और विलासी था। इसके राणा बनते ही मीरा के जीवन के कष्टों की कहानी नए सिरे से शुरू हो गई।

उस दिन भी मीरा के भवन में साधु-सन्तों का सत्संग हो रहा

था। भजन-कीर्तन और उसके साथ वजने वाले झांझ, मृदंग, खड़ताल आदि की ध्वनियों से सारा वातावरण गूंज रहा था। मीरा भक्ति-भाव में मस्त होकर अपने इष्टदेव के सामने पैरों में घुंघरू बांधे नाच रही थी। तभी राणा विक्रमादित्य शिकार खेल और अपनी रंगरेलियां मना कर उधर से गुजरे। भजन-कीर्तन का शोर सुन कर उनके माथे पर बल पड़ गए। क्रोध भरे स्वर में भुनभुनाते हुए उन्होंने दासियों को पुकार कर पूछा :

"यह सव क्या हंगामा हो रहा है ?"

"मेड़तणी राणी (मीरा) साहिवा के भवन में भजन-कीर्तन चल रहा है, अन्नदाता।" दासी ने झुक कर डरते-डरते बताया।

वास्तव में राणा वनने से पहले विक्रमादित्य चितौड़ में न रहकर रण थम्भौर के किले में रहा करते थे। इस कारण मीरा की भक्ति-भावना के सम्बन्ध में उन्होंने सव सुन तो रखा था, पर अपने कानों से सुना और आंखों से देखा कभी न था। अतः दासी के मुख से अपनी विधवा भाभी मेड़तणी राणी मीरा के भजन-कीर्तन की वात सुन विक्रमादित्य तेज कदमों से चलते हुए उसके भवन के द्वार पर पहुंचे। वहां साधु-सन्तों के सामने नंगे मुंह मीरा को नाचते देख, उनका पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। वहां से मुड़कर वह अपनी मां (मीरा की सास) के भवन में गए और चिल्ला कर वोले :

"यह मेवाड़ का राजभवन है या साधु बेला, मां ! मेड़तणी राणी ने यह क्या मजाक वना रखा है ? इतने-इतने शण्ड मुशंड बने ये साधु भिखारी यहां घुस कैसे आते हैं ?"

"अव तुम्हीं देख लो, क्रिम।" मां ने कहा—"इस कुलनासी ने पहले तो अपने पति को खा लिया, अव विधवा हो जाने पर भी इसे तनिक लोक-लाज नहीं है। वस, हर समय इसका यही सब चलता रहता है। सारी दुनिया कहती है कि यह मीरा तो

पागल हो गई है, पर कोई बस नहीं हमारा।"

"हूं-ऊं!" सुनकर विक्रमादित्य ने लम्बी हुंकार भरने के बाद फिर कहा—"बस कैसे नहीं, मां! मैं देखता हूं।" और तेज-तेज कदम पटकते हुए वह वहां से चला गया।

उसके जाने के बाद राजमाता ने मीरा की मायके से साथ आई सहेली मिथुला को बुलाकर कहा :

"देखो, मिथुला! तुम्हारी सहेली अब और भी बिगड़ती जा रही है। वह किसी के भी समझाने-बुझाने की परवाह नहीं करती। उसका साधुओं के सामने नाचना-गाना नए राणा को बिल्कुल पसन्द नहीं है। तुम उस कुलनासी को अच्छी प्रकार से यह सब बता दो। उसे समझाओ कि वह राज-परिवार और विधवा की मर्यादा का पालन करती हुई यहां रहे।"

सुनकर मिथुला बहुत उदास हो गई। वह नए राणा विक्रमादित्य के गुण-स्वभाव से परिचित हो चुकी थी, अतः मीरा के बारे में विशेष चिन्तित हो उठी। अवसर पाकर उसने मीरा को समझाते हुए कहा :

"चारों ओर निन्दा हो रही है। नए राणा तो तुम पर बहुत ही अप्रसन्न हैं, रानी। राजमाता कुलनासी कहकर गालियां दे रही थी। तुम्हारा भजन-कीर्तन और साधु-सन्तों के आगे नाचना-गाना नए राणा जी को बिल्कुल पसन्द नहीं। पहले बात और···"

"हां, इस मेड़तणी राणी को यह बात अच्छी तरह समझा दो।" मिथुला की बात पूरी होने से पहले ही, अचानक वहां प्रगट हो राणा विक्रमादित्य ने कहा—"आगे से यहां कोई साधु-भिखारी नहीं आना चाहिए। नहीं तो मुझसे बुरा कोई न होगा।"

सुनकर मिथुला तो सहम गई और मीरा कुछ गम्भीर-सी हो गई। दो क्षण बाद मीरा ने दृढ़ स्वर में राणा की ओर देखते

हुए कहा :

"सांवरिया रंग राचां राणा, सांवरिया रंग राचां।
ताल पखावज मृदंग बजावां, साधां आगे नाचा।"

"चुप रहो, निर्लज्ज !" पांव पटकते हुए राणा ने उसकी बात को काटते हुए कहा—"अब यह सब बन्द करके तुम्हें राणा-वंश की मर्यादा में रहना चाहिए, नहीं तो परिणाम अच्छा न होगा।" कहते हुए राणा विक्रमादित्य गुस्से से भरे, और भी पता नहीं क्या-क्या बड़बड़ाते हुए वहां से चले गए।

मिथुला और मीरा उन्हें जाता देखती रही। दो-चार क्षण बाद मीरा ने फिर खड़ताल उठाई और बिना किसी ओर देखे, भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति को लक्ष कर गाने-नाचने लगी :

"मीरा गिरिधर हाथ बिकानी लोग कहें बिगड़ी।"

बस, इसी प्रकार का क्रम चलने लगा। राणा विक्रमादित्य की आज्ञा से कुछ दिन बाद मीरा का खाना-पीना तक बन्द कर दिया गया। वह भूखी-प्यासी रहकर भी अपने सांवरिया के सामने नाचती-गाती रही। जब तीन-चार दिन भूखे-प्यासी रहने पर भी राणा मीरा को अपने भक्ति-मार्ग से हटा न सके, तो उन्होंने क्रोध से भर मीरा को मरवा डालने का निर्णय कर डाला। अपनी योजना के अनुसार एक शर्बत के प्याले में विष मिलाकर अपनी विश्वस्त दासी के हाथों यह सिखा कर मीरा के पास भिजवाया कि कई दिनों की भूखी वह पहले इसे पीकर फिर अन्न-जल ग्रहण कर लें। राणा अब उन्हें भक्ति-मार्ग से रोकेंगे नहीं। सिखाए अनुसार दासी ने वह विष मिले शर्बत का प्याला मीरा को देते हुए कहा :

"लीजिए मेड़तणी राणो साहिबा ! राणा जी ने आज्ञा दी है कि इसे पीकर अन्न-जल ग्रहण करें और फिर जैसा चाहें जीवन जिएं।"

भोले भाव से मीरा ने प्याला ले लिया।

मुस्कराती हुई दासी चली गई।

"नहीं, इसे मत पीना।" तभी अचानक वहां आकर सहेली मिथुला ने उसका हाथ थाम लिया--"मुझे इसमें कोई षड्यंत्र नजर आता है। मत पियो इसे।'

"षड्यंत्र !" मीरा ने मुस्करा कर मिथुला की तरफ देखा और कहा—"यह तो मेरे गिरधर गोपाल का चरणामृत ही है मेरे लिए, फिर षड्यंत्र कैसा ?" कहकर मीरा ने प्याला एक बार श्री कृष्ण की मूर्ति के सामने किया, आंख मूंदकर कोई प्रार्थना की और फिर गटागट पी गई।

"ओह ! मीरा रानी !"

यह देख मिथुला ने चिल्ला कर अपना सिर थाम लिया। दो-चार क्षण वाद जव उसने आंखें उठाकर देखा, तो मीरा उसी प्रकार भक्ति-भाव में डूवी मुस्करा रही थी। उसका कुछ भी न विगड़ा था। अगले दिन वह फिर साधु-सन्तों की मण्डली में पैरों में घुंघरू वांध कर कृष्ण-मूर्ति के सामने नाच-गा रही थी :

"पग वांध घुंघरयां नाची रो।
लोग कहें मीरा भई वांवरी, सासु कह्या कुलनाशी री।
विष रो प्यालो राणा भेज्या, पीवत मीरा हासी री॥
तन-मन वारौं हरि चरणां मां दरसन अमृत पास्यां री
मीरा के प्रभु गिरधर नागर थारी शरणं आस्यां री॥"

और फिर इसी तरह उसका जीवन-क्रम चलने लगा। सब देख-सुन राणा विक्रमादित्य मीरा को समाप्त करने के अन्य उपाय करने लगे।

राणा विक्रमादित्य के तेवर चढ़ गए। गुस्से से पांव पटकते हुए

उन्होंने राजमाता से कहा :

"हद कर दी इस मेड़तणी राणी (मीरा) ने। भजन-कीर्तन के नाम पर वह योगियों से आंख लड़ाती फिरती है।"

"क्या कहते हो, विक्रम !" माता ने आश्चर्य से उसकी तरफ देखते हुए कहा—"इतना बड़ा लांच्छन ?"

"और नहीं तो क्या ?" विक्रमादित्य ने और भी जल-भुन कर कहा—"गली-गली में, घर-घर में, मेवाड़ के प्रत्येक रास्ते पर योगी-संन्यासी इसी के प्रेम-गीत गाते फिरते हैं। हमारे घर-परिवार की बदनामी की अब तो हद हो गई है, मां।" और फिर उसने मीरा के एक पद की पंक्ति गाते हुए कहा—'जोगिया री मूरत मन में बसी' जैसे गीत किसकी याद में गाए जा रहे हैं ? यह कृष्ण-भक्ति केवल ढोंग है, मां। भीतर तो इस कलंकिनी की भूखी वासना ही काम करके हमारे कुल का नाश कर रही है।"

"कैसे छुटकारा पाया जाए इस कुलनासी से।" मीरा की सास और राणा विक्रमादित्य की मां ने कहा—"तुम्हीं कोई पक्का उपाय करो, विक्रम ! यह विष-बेल तो अब फैलती ही जा रही है।"

"ठीक है, मां।" विक्रमादित्य ने कहा—"अब इस विष-बेल को जड़-मूल से ही काटना होगा।"

कहकर राणा विक्रमादित्य अपने भवन की ओर चला गया।

उसे अब एक पल का भी चैन न था। वह मीरा को सताने के तरह-तरह के उपाय करने लगा। हर समय कोई-न-कोई बात लेकर उसका नाक में दम किये रहता। उसने मीरा का भवन तक बदल डाला। उसे एक ऐसे बंद और उपेक्षित भवन में भेज दिया, जिसके बारे में लोगों में प्रचलित था कि वहां भूत-प्रेतों का निवास है। पर वहां पहुंच कर भी मीरा निडर भाव से गाती रही—

"म्हारे जन्म मरन के साथी, थां, ने नहि विसरूं दिन-राती।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है जानत मेरी छाती।
ऊंची चढ़-चढ़ पन्थ निहारूं, रोय-रोय अखियां राती ॥"

उस भूतिया भवन में मीरा को कई दिनों तक अकेली ही रखा गया। यह आशा की गयी कि वहां से डरकर उसके चीखने-चिल्लाने की आवाजें आयेंगी, पर राणा विक्रमादित्य के आदमी जब भी छिपकर सुनने-देखने आते, उन्हें कृष्ण-कीर्तन की आवाज ही सुनाई देती। गुस्से से भरकर राजा ने एक आदमी को बुला कर आदेश दिया :

"जितने भी जहरीले बिच्छू मिल सकें, ले आओ।"

वह आदमी अगले दिन सैंकड़ों विच्छू पकड़कर ले आया।

तब राणा ने अपनी एक कुटिल स्वभाव वाली खास दासी को बुलाकर आदेश दिया :

"ये बिच्छू ले जाकर चुपके से मेड़तणी राणी के बिस्तर और उठने-बैठने के स्थलों पर छिपाकर छोड़ दो।"

दासी ने वैसा ही किया।

मीरा जब बिस्तर पर सोने लगी, तो देखा उस पर कितने ही फूल बिखरे पड़े हैं। अचरज से भरकर जब उसने अपने भवन में चारों ओर नजर दौड़ाई, तो वहां भी फूल बिखर रहे थे। मुस्कराकर मीरा ने अपने सांवरे प्रिय (श्रीकृष्ण) का स्मरण किया और सुख की नींद सो गयी।

अपना यह वार भी खाली गया देख राणा विक्रमादित्य कुढ़ कर रह गया। दासी को कहकर उसने मीरा की सेज पर विष-बुझे लोहे के तीखे कांटे बिछवाये, पर मीरा की भक्ति-भावना से वे भी कोमल अंकुर बन गये।

इस प्रकार महाराणा विक्रमादित्य मीरा को मार डालने के प्रयत्न तो करता रहा, उसे और भी तरह-तरह के कष्ट देता

रहा। मीरा सब देखती, सुनती और सहती रही। उसकी भक्ति-भावना में तो कोई कमी नहीं आयी, पर अब वहां के निवास से उसका मन खट्टा हो गया। वह वहां से छुटकारा पाने के लिए छटपटाने लगी। पर जब उसे छुटकारे का कोई उपाय नजर न आता, तो अपने गिरिधर नागर की मूर्ति के सामने बैठकर शिकायत भरे स्वर में प्रार्थना करने लगती :

"पतियां में कैसे लिखूं, लिखि ही न जाइ।
कलम धरत मेरो कर कम्पत, हिरदो रहो धर्राइ ;
वात कहुं मोहि बात न आवै, नैन रहे झर्राइ॥
किस विधि चरण कमल मैं गहिहौ, सबहिं अंग थर्राइ।
मीरां कहै प्रभु गिरधर नागर सबहिं दुख बिसराइ॥"

और उस दिन अचानक जब मीरा की सहेली मिथुला उसके सामने आ खड़ी हुई, तो वह देखती ही रह गयी।

"मेरी रानी बहन!" आंसू भरी आंखों से आगे बढ़कर मिथुला ने मीरा को गले लगाते हुए कहा—"यह तुम्हारी दशा कैसी हो रही है, रानी बहन ? ओह ! तुझे कितने-कितने दुख सहने पड़ रहे हैं यहां अकेली रहकर !"

"अकेली कहां, मिथुला !" मीरा ने श्रीकृष्ण की मूर्ति की तरफ इशारा करते हुए कहा—"मेरा सांवरिया, मेरा गिरधर गोपाल जो हर क्षण मेरे साथ रह रहा है।" उसे अपने से परे हटाते हुए मीरा ने फिर कहा—"पर तुम यहां कैसे आ पाय हो, मिथुला ?"

"मुझे स्वयं राणा ने अब से तुम्हारे साथ रहने की आज्ञा दे दी है, रानी बहन !" मिथुला ने उत्तर दिया।

"स्वयं राणा ने !" मीरा ने मुस्कराकर श्रीकृष्ण की मूर्ति की तरफ देखते हुए कहा—"लगता है, अब कोई और परीक्षा ली जाने वाली है।"

"कोई कुछ नहीं जानता।" मिथुला ने कहा।

कुछ दिन और बीत गये।

मिथुला अब मीरा के साथ ही रहने लगी। उधर राणा विक्रमादित्य शान्त नहीं बैठा था। वह मीरा का जीवन समाप्त कर डालने के उपाय निरन्तर सोचता रहता था। पर इस बीच उसने मीरा पर अपना विश्वास जमाने के लिए उसे कष्ट देने बन्द कर दिये थे। पाबन्दियां भी ढीली कर दी थीं। अन्त में राणा विक्रमादित्य ने मीरा के प्राण लेने का एक और उपाय सोच डाला। उसने अपने खास आदमियों से कहकर एक बहुत ही जहरीला काला नाग मंगवाया। उसे सोने की पिटारी में बन्द करवा, खासी दासी को बुलाकर आदेश दिया :

"यह पिटारी मेड़तणी राणी के पास पहुंचा दो। कहना कि इसमें कीमत गहने हैं। कल सुबह स्नान के बाद इसमें धरे गहने पहन कर ही वह पूजा-भक्ति करें।"

दासी ने मीरा के पास जाकर पिटारी उसे दे दी। राणा का अनुरोध भी सुना दिया। मीरा ने मुस्कराकर पिटारी ली और राणा के लिए आशीर्वाद भेजा।

दासी वापिस आ गयी!

अगली सुबह स्नान के बाद मीरा जब पिटारी खोलने लगी, तो सहेली मिथुला ने डरे स्वर में टोका :

"रहने दो –इसे बन्द ही रहने दो, रानी! मुझे तो इसमें भी राणा का कोई षड्यंत्र ही लगता है।"

"जो इस गिरधर नागर की इच्छा!"

कहकर मुस्कराते हुए मीरा ने पिटारी का ढक्कन खोल दिया। अचकचाकर देखा, भगवान की कृपा से पिटारी में नाग के स्थान पर शालिग्राम नजर आया। मीरा ने श्रद्धा से मस्तक झुका दिया। सच, जिसकी रक्षा भगवान करते हैं, उसे कोई किसी भी तरह

मार नहीं सकता।

मीरा ने शालिग्राम की विधवत् पूजा की। फिर वह भाव-विभोर होकर भक्तिपूर्वक गाने लगी :

मेरा तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई।।
भाया छाड्यां बंधा छाड्यां छांड्यासगा सोई।
साधां संग बैठ-बैठ लोक-लाज खोई।।
भगत देख राजी होई जगत देख रोई।।
अंसुवन जल सींच-सींच प्रेम बेल वोई।।
अव तो वात फैल गयी जाणे सब कोई।
मीरां हरि लगन लागी होना हो सो होई।।"

जब विष का प्याला पीने से भी मीरा वच गयी, राणा विक्रम द्वारा सोने की पिटारी में जहरीला काला नाग बन्द करके भेजने पर भी उसका कुछ न बिगड़ा, उलटे मीरा की भक्ति के प्रताप से वह नाग शालिग्राम के रूप में उसके सामने आया, तो यह सब देख-सुन एक दिन मीरा ने अपनी सहेली मिथुला से कहा :

"अब यहां रह पाना सम्भव नहीं लगता, मिथुला ! जी करता है, कहीं तीर्थ-यात्रा के लिए निकल चलूं !"

मिथुला ने भी मीरा की वात का समर्थन किया।

राणा विक्रमादित्य के पास मीरा ने अपने तीर्थ-यात्रा पर जाने की बात पहुंचा दी। पहले तो यह बात सुनकर उसका माथा क्रोध से जलने लगा, फिर उसने सोचा कि इस बहाने कम-से-कम यह मेवाड़ से तो दूर चली ही जायेगी, अतः उसने स्वीकृति दे दी।

मीरा किसी साधु-मंण्डली के साथ तीर्थ-यात्रा की तैयारी करने लगी। उसने मिथुला से कहा :

"तुम चाहो तो यहीं रह सकती हो, या फिर अपने मायके कुड़की गांव ही चली जाओ।"

"यह क्या कह रही हो, रानी बहन!" मिथुला ने आंखों में आंसू भर आश्चर्य से कहा—"मैंने तो तुम्हारा साथ कभी न छोड़ने का प्रण कर रखा है। नहीं, मुझे यहां रहने या कहीं और जाने की बात मत कहो।"

और वह फूट-फूट कर रोने लगी।

"अरे नहीं, पगली!" मिथुला को चुप कराते हुए मीरा ने फिर कहा—"मैं तो तुम्हारे भले के लिए ही कह रही थी।"

"मेरा भला उसी में है, जिसमें तुम्हारा।" मिथुला ने प्रेम भरे पर दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।

"तो ठीक है। दोनों साथ-साथ चलेंगी।"

और दोनों ही तीर्थ-यात्रा की तैयारी करने लगीं।

उधर राणा विक्रमादित्य की विलासिता और अयोग्यता के कारण मेवाड़ राज की दशा खराब होती जा रही थी। उसके व्यवहार से तंग आकर मेवाड़ के सरदार और सहयोगी उसका साथ छोड़ते जा रहे थे। मेवाड़ की फूट और दुर्बलता से लाभ उठाने के लिए गुजरात के बादशाह बहादुर ने उस पर हमला कर दिया। राणा में उसका सामना करने की शक्ति और योग्यता तो थी नहीं, अतः उसने बहुत बड़ी रकम देकर उससे पीछा छुड़ा लिया।

अब मेवाड़ में अपने को कोई भी सुरक्षित नहीं समझता था। राणा विक्रमादित्य की आदतों में इतने पर भी कोई सुधार नहीं आया था। मेवाड़ के सरदार उसे गद्दी से उतार महाराजा सांगा और महारानी कर्मवती के बेटे उदयसिंह को राणा बनाना चाहते थे, पर वह अभी बहुत छोटा था। उधर बहादुर शाह दुबारा मेवाड़ पर आक्रमण की तैयारियां करने लगा था।

मीरा ने तीर्थ-यात्रा पर निकलने से पहले अपने मायके मेड़ता जाने का निश्चय किया। एक दिन वह मिथुला के साथ वह अपने चाचा राव वीरमदेव और चचेरे भाई राव जयमल के पास मेड़ता निवास के लिए आ पहुंची।

उधर गुजरात के बहादुर शाह ने मेवाड़ पर फिर आक्रमण कर दिया। डरकर विक्रमादित्य कहीं भाग गया। बचे-खुचे सरदार लड़ते हुए मारे गये। रानी कर्मवती ने तेरह हजार राजपूतानियों के साथ जौहर की आग में जलकर प्राण त्याग दिये। बालक उदयसिंह को पहले ही कहीं भेज दिया गया था, अतः राणा-वंश में वही अकेला बचा रहा।

चार

मेवाड़ से मेड़ता आकर मीरा का जीवन शान्तिपूर्वक अपने गिरधर गोपाल की भक्ति भजन में बीतने लगा।

उधर चित्तौड़गढ़ के किले पर गुजरात के बादशाह बहादुर शाह का अधिकार भी बना न रह सका। उसके आक्रमण के दिनों में महारानी कर्मवती (महाराणा सांगा की बड़ी रानी, विक्रमादित्य की सौतेली और उदयसिंह की सगी मां) ने मुगल सम्राट बाबर के बेटे हुमायूं को राखी भेजकर अपना राखीबन्ध भाई बना लिया था। राखी पाते ही वह बहादुर के आक्रमण को विफल करने के लिए बिहार से चित्तौड़गढ़ की ओर चल पड़ा था। पर उसके पहुंचने से पहले ही युद्ध समाप्त हो चित्तौड़ पर बहादुरशाह का अधिकार हो चुका था। रानी कर्मवती बाकी

राजपूतानियों के साथ जौहर की आग में जलकर राख हो चुकी थी। हुमायूं ने उसकी चिता की राख सर आंखों से लगाकर महाराणा विक्रमादित्य की खोज करवाई। क्योंकि हुमायूं के वहां पहुंचने से पहले ही मेवाड़ पर राज करने की इच्छा त्यागकर मारे डर के बहादुर शाह वापिस गुजरात भाग गया था, अतः राणा विक्रमादित्य को खोज हुमायूं ने उसे फिर से वहां का राणा बना दिया। इस प्रकार राखी का मूल्य चुकाया।

हुमायूं बंगाल में बढ़ रहे शेरशाह सूरी के प्रभाव को रोकने के लिए चित्तौड़ से वापिस बंगाल की ओर चला गया।

हुमायूं के लौट जाने के बाद राणा विक्रमादित्य फिर से अपनी विलास-वासना में लीन हो गया। उसने समय की मार से कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की। अतः मेवाड़ का राज्य फिर से अनेक प्रकार के षड्यंत्रों का शिकार बनने लगा। षड्यंत्र में राणा विक्रमादित्य के चाचा की दासी से उत्पन्न सन्तान बनवीर और उसकी मां भी शामिल हो गये। वे लोग राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी नन्हें बालक उदयसिंह को भी मार डालने के प्रयत्न करने लगे। पर पन्ना नामक धाय ने अपने नन्हें बेटे का बलिदान देकर उदयसिंह को वहां से सुरक्षित बाहर भिजवा दिया।

इस बीच राणा विक्रमादित्य या उस परिवार के किसी भी अन्य सदस्य ने इस बात की कोई खोज-खबर नहीं ली कि मेड़तणी राणी मीरा कहां है, किस हाल में है?

मेड़ता में मीरा के भवन में हर समय भजन-कीर्तन के स्वर गूंजते रहते। साधु-सन्तों की भीड़ लगी रहती। वह पैरों में घुंघरू बांधकर अपने गिरधर गोपाल के दर्शनों की प्यास में बावरी बनी नाचती-गाती रहती :

"पिया अब घर आज्यो मेरे, तुम मोरे हूं तोरे।
मैं जन तेरा पंथ निहारूं, मारग चितवत तोरे ।।
अवध बदीती अजहूं न आये, दुतियन सूं नेह जोरे ।
मीरां कहे प्रभु कब रे मिलोगे, दरसन बिन दिन तोरे ।।"

उसका मन अब अत्यधिक अशान्त रहने लगा । कृष्ण-दर्शन की व्याकुलता बढ़ती ही गयी । घर-बाहर कहीं भी उसका मन न लगता । जब भी वह तीर्थ यात्रा पर जाने की इच्छा प्रकट करती, चाचा वीरमदेव और भाई जयमल रोक देते । कहते :

"यहां जब उसे इच्छित जीवन जी पाने की सुविधा है, तो फिर कहीं आने-जाने की जरूरत ही क्या है ?"

मीरा के हठ करने पर स्वयं भी वैष्णव स्वभाव वाले भक्त और कवि भाई जयमल कहते :

"हम स्वयं तुम्हें सभी तीर्थों की यात्रा करवा लायेंगे ।"

पर मीरा का मन जाने क्यों हर समय अपने प्रिय कृष्ण की जन्म-भूमि वृन्दावन पहुंचने के लिए तड़पता ही रहता । वह सहेली मिथुला से कहती :

"चलो, कभी चुपचाप निकल चलें, मिथुला ! अब यहां-वहां का कुछ भी तो अच्छा नहीं लगता ।"

"पर चाचाजी और भैया ?" मिथुला मीरा को समझाते हुए कहती—"उनका दिल दुखाना भी तो उचित नहीं ।"

"ओह मिथुला !" और तब प्रिय-विरह से पीड़ित होकर मीरा व्याकुल स्वरों में गा उठती :

"हे री, मैं तो प्रेम-दिवानी मेरा दर्द न जाणे कोय ।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विध सोणा होय ।
गगन मण्डल पे सेज पिया की किस विध मिलणा होय ।
घायल की गति घायल जाणे कि जिन लाई होय ।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिल्यां सुख होय ।।"

बेचारी मिथुला ! वह मीरा की मनःस्थिति को पहचान, विवश-सी उसकी ओर मात्र देखती रह जाती।

इसी बीच हालात ने एक और करवट ली।

जोधपुर के राव मालदेव ने एक दिन अचानक मेड़ता पर हमला कर दिया। राव वीरमदेव, राव जयमल और मेड़ता-वासियों ने डटकर उसका मुकाबला तो किया, पर जीत न सके। मालदेव की विजय हुई। मीरा के चाचा और भाई युद्ध में काम आये। मेड़ता पर मालदेव का अधिकार हो गया।

तभी तीर्थ यात्रा करती हुई साधु-सन्तों की एक मण्डली मेड़ता के बाहर ठहरी। उचित समय जान मीरा ने मिथुला को साथ लिया और साधु-सन्तों की उस मण्डली में जा मिली।

अगली सुबह वह मण्डली यात्रा पर आगे चल दी।

ससुराल के बाद मायके के वातावरण से भी बाहर निकल मीरा ने सुख की सांस ली।

अब उसका जीवन पूरी तरह कृष्णमय हो गया था।

साधु-मण्डली का वह यात्री-दल, उसमें सम्मिलित अपनी सहेली मिथुला के साथ मीरा, एक के बाद एक तीर्थों की यात्रा करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते गये। रास्ते में जहां कहीं भी किसी भक्त या महापुरुष का नाम सुन पड़ता, उसके साथ सत्संग करने मीरा जा पहुंचती। विचारों का आदान-प्रदान भी होता। कृष्ण-भक्त होते हुए भी निर्गुणवादी सन्तों के सम्पर्क में आकर मीरा ने उनका प्रभाव भी ग्रहण किया और अनेक पद रचे। मिथुला उन पदों को लिखती जाती थी। काशी के सन्त रैदास का प्रभाव उसने विशेष रूप से ग्रहण किया। उन्हें गुरु के समान ही मान दिया।

अपनी यात्रा के दौरान मीरा ने महाप्रभु चैतन्य के भी दर्शन किये। वह जीव गोस्वामी से भी मिली। और भी कई महापुरुषों के दर्शन करती हुई वह वृन्दावन की ओर बढ़ने लगी। वृन्दावन पहुंचकर वह गोस्वामी वल्लभाचार्य के बेटे गोस्वामी विट्ठलदास जी के दर्शन करने भी गयी। पर वल्लभ-सम्प्रदाय के लोगोंके साथ मीरा की भक्ति-भावना की पटरी न बैठ सकी। इस कारण वे लोग कई बार मीरा को 'दरी रांड़' जैसी गालियां भी देने लगे। वहां वह कृष्ण चैतन्य की भक्ति-भावना से अधिक प्रभावित हुई। बिना किसी की परवाह किए, किसी से दीक्षा लिये वह अपने ही ढंग से, अपने गिरधर गोपाल के रंग में रंगकर भक्ति, भजन, पूजन-नृत्य करती रही।

अपने प्रिय श्रीकृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन पहुंच मीरा का मन बहुत रम गया। तीर्थ-यात्री साधु-मण्डली आगे बढ़ गयी। उसके जाने के समय सखी मिथुला ने मीरा से कहा :

"तुम तो तीर्थ यात्रा के लिए निकली थी, रानी बहन !"

"यहां रहकर वही सब तो कर रही हूं, मिथुला। मेरे गिरधर गोपाल की लीला भूमि से बढ़कर और कौन-सा तीर्थ हो सकता है भला ?" मीरा ने कहा —"यहां क्या नहीं है ?" और फिर वह विभोर होकर वृन्दावन की प्रशंसा में गाने लगी :

"आली म्हाने लागे वृन्दावन नीको।
घर-घर तुलसी ठाकुर-पूजा दरसण गोविन्द जी को॥
निरमल नीर बहत जमना में, भोजन दूध-दही को।
रतन सिंहासन आप विराजे, मुगट बन्यो तुलसी को।
कुंजन-कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर, फीको॥"

एक दिन मीरा जब वृन्दावन में भी सबके सामने नाचने लगी, तो एकान्त पाकर सहेली मिथुला ने कहा :

"रानी बहन, यहां भी सब तरह के पुरुषों के सामने नाचना क्या अनुचित नहीं लगता तुम्हें ?"

सब प्रकार के पुरुषों के सामने !" मीरा ने आश्चर्य प्रगट करते हुए उसकी तरफ देखा। पूछा— "कौन पुरुष ?"

"वही, जिनके सामने यहां-वहां···कहीं भी नाचने-गाने लगती हो।" मिथुला ने उत्तर दिया।

"भोली !" मीरा ने मुस्कराते हुए कहा—"पगली, मैं तो केवल अपने गिरधर गोपाल के सामने ही नाचा-गाया करती हूं।"

"यह भी कोई बात हुई।"

"बात क्यों नहीं, मिथुला !" मीरा ने नयन मूंदते हुए फिर कहा—"इस वृन्दावन की लीलाभूमि पर तो क्या, सारे संसार में मुझे तो अपने गिरधर गोपाल के सिवा कहीं कोई भी और पुरुष दिखाई नहीं देता।"

"क्या—आ।"

अवाक्-सी हो मिथुला उसकी तरफ देखती ही रह गयी।

"यहां की धरती का प्रत्येक कण मेरे सांवरे कृष्ण की लीलाओं से आज भी गूंजता रहता है।" दो क्षण बाद मीरा ने फिर कहा—"जब मेरे प्रियतम की नित्य लीलायें चलती रहती हैं, तो फिर उसकी राधा मैं भला उनमें भाग लिये बिना कैसे रह सकती हूं ?" दो-चार क्षणों तक मिथुला की ओर देखते रहने के बाद मीरा ने फिर कहा—"इस वृन्दावन की लीलाभूमि पर जहां-जहां भी मेरे गिरधर गोपाल के कदम पड़े थे, उन स्थानों का आभास पाकर मेरे पांव अपने आप ही थिरकने लगते हैं। इस कारण, हे सखि···" और आगे की बात उसने गुनगुनाते हुए पूरी की।

"जहां-जहां पांव धरूं धरणी पर,
तहां-तहां निरत करूं री !"

इसके बाद बेचारी मिथुला भला क्या कहती ?

वृन्दावन में रहते हुए भी मीरा का मन कृष्ण-प्रेम की पीर में निरन्तर बहता गया। ऋतु-परिवर्तन के साथ उसके स्वर में भी परिवर्तन आता गया। धरती की हरियाली, बिजली की चमक, बादलों की गर्जना, मोरों का नाचना, पपीहे का पी हू—स्वर, हवा की सरसराहट, सभी उसके वियोग की पीड़ा को बढ़ाने लगे और वह व्याकुल स्वरों में अपने प्रिय को पुकार उठती :

"पिया मोहि दरसण दीजै हो।
बेर-बेर मैं टेरहूं, अहे किया काजै हो॥"

ऐसे क्षणों में मिथुला उसे बड़ी कठिनता से सम्हाल पाती।

मीरा का बावलापन बढ़ता ही गया। कई बार जब उसे सम्हाल पाना कठिन हो जाता, तो मिथुला उसे घर लौट चलने की सलाह देते हुए कह उठती :

"अब और नहीं, रानी बहन ! चलो, अब मेड़ता या चित्तौड़-गढ़ लौट चलें।"

"मेड़ता या चित्तौड़ !" आश्चर्य प्रकट करते हुए मीरा उत्तर देती—"मेरे पति तो यहां रहते हैं। माता-पिता, भाई-बन्धु भी सब यहीं पर हैं, तब पति-गृह छोड़कर कहीं और कैसे जा सकती हूं ?"

"ओह !" मिथुला की आह निकल जाती।

"तुम मुझे गिरधर गोपाल के मन्दिर ले चलो।"

मीरा कहती और मिथुला उसे साथ ले कृष्ण-मन्दिर में पहुंच जाती। वहां पहुंच कृष्ण-मूर्ति की तरफ एकटक देखते हुए मीरा विभोर होकर गाने लगती :

"मने चाकर राखो जी।
चाकर रहसूं बाग लगासूं नित उठ दरसण पासूं।
बृन्दावन की कुंज गलिन में तेरी लीला गासूं।

चाकरी में दरसण पाऊं, सुमिरण पाऊं, खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊं, तीनों बातें सरसी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गल वैजन्ती माला।
ब्रिन्दावन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला।"

और इस प्रकार वृन्दावन में निवास करते हुए मीरा को कई महीने वीत गये। उसने सारे वृजधाम, मथुरा और आस-पास के प्रत्येक उस स्थल पर भजन-कीर्तन, नृत्य-गायन किया, जहां-जहां कभी उसके गिरधर गोपाल के चरण पड़े होंगे। वृजधाम में अन्य कृष्ण भक्त कवियों के समान ही उसके पद भी घर-घर में गाये जाने लगे। उसकी वढ़ती हुई लोकप्रियता को देख वहां के पाखण्डी लोग तथा भक्ति-सम्प्रदायों से जुड़े लोग अव उसकी राह में वाधा पहुंचाने लगे। इससे ऊवकर मीरा ने एक दिन अपनी सहेली और संगिनी मिथुला से कहा :

"यहां से मेरे गिरधर गोपाल द्वारकापुरी चले गये थे न, मिथुला! चलो, अब हम भी वहीं जाकर उनके दर्शन-सेवा करेंगी!"

मिथुला मीरा के मन की दशा समझती थी, अतः इन्कार न कर सकी। सो एक दिन वे दोनों द्वारकाधाम की यात्रा पर जा रही भक्तों की एक मण्डली के साथ हो लीं।

एक बार फिर एक लम्वी और कठिन यात्रा शुरू हो गयी।

पांच

इरादा पक्का हो, तो कुछ भी दूर नहीं होता।

सो कई दिनों तक लम्बी और थका देने वाली यात्रा करते हुए मीरा अन्त में द्वारकापुरी पहुंच ही गयी। वहां के प्रमुख मन्दिर में द्वारकाधीश (भगवान श्रीकृष्ण) जी के दर्शन कर उसकी सारी थकान, सारी पीड़ा, चिन्ता और भावना दूर हो गयी।

मीरा के भजन-कीर्तन, गिरधर गोपाल की मूर्ति के सामने नाचने-गाने की प्रक्रिया में यहां भी कोई कमी नहीं रही। अतः कुछ ही दिनों में वह द्वारका के सभी भक्तों, यात्रियों की भावना और चर्चा का केन्द्र बन गयी। लोग बड़े ध्यान से उसके भक्ति भरे पद सुनते और उसके भजन-कीर्तन में मग्न हो जाते।

द्वारकापुरी उड़ीसा राज्य में स्थित है। वहां की मूल भाषा उड़िया है। अपनी भक्ति-भावना वहां के मूल निवासियों को समझाने के लिए मीरा ने कृष्ण-भक्ति के कई पद उड़िया भाषा में भी रचे ऐसा माना जाता है। मीरा जब द्वारका में थी, तब मेवाड़ के कुछ भक्त यात्री भी वहां दर्शन करने आये। उन्होंने मीरा को देखा और पहचान लिया कि यह तो 'मेड़तणी राणी' है। मेवाड़ वापिस पहुंच उन्होंने राणा-परिवार और मेड़ता में राव जयमल को मीरा के द्वारकाधाम में होने की सूचना दे दी। सुनकर मीरा के ससुराल और मायके-घर दोनों के कान खड़े हो गये।

उधर मेवाड़ और मेड़ता की स्थितियां बदल चुकी थीं।

मीरा को कष्ट देने वाले राणा विक्रमादित्य गृह-कलह का शिकार हो अपने ही एक चचेरे भाई के हाथों मारे जा चुके थे। अपनी विलासिता, क्रूरता और कायरता के कारण मेवाड़ के

सरदारों का विश्वास तो वह पहले ही खो चुके थे। अतः उन्हें बचाने का प्रयास किसी ने न किया। उन्हें मारकर उनके चाचा की रखैल दासी का पुत्र बनवीर मेवाड़ का राणा बन बैठा था, जब कि असली उत्तराधिकारी उदयसिंह भी अब पन्ना धाय के प्रयत्नों से पाल-पोसकर बड़ा हो चुका था। वह वास्तव में महाराणा सांगा का योग्य बेटा था। आस-पास के छोटे राज्यों और मेवाड़ के स्वामीभक्त सरदारों की सहायता से उदयसिंह ने अपने पैतृक राज्य पर अधिकार कर लिया। बनवीरसिंह भी मारा गया। राणा बनने के बाद वीर उदयसिंह ने मेवाड़ के जो प्रदेश दूसरों के हाथ चले गये थे, उन्हें भी मुक्त करा लिया। अब मेवाड़ में शान्ति थी और वहां का शासन ठीक प्रकार से चलने लगा था।

उधर मेड़ता पर भी जोधपुर के राव मालदेव और उसके वंशजों का शासन समाप्त हो चुका था। मीरा के भक्त और कवि चचेरे भाई राव जयमल ने अपने राज्य मेड़ता को मालदेव से स्वतन्त्र करा लिया। इस प्रकार मीरा के ससुराल और मायके के दोनों राज्य उनके वास्तविक अधिकारियों को फिर से प्राप्त हो हो गये। अब उस पर अत्याचार करने, या कष्ट देने वाला कहीं कोई न रह गया।

द्वारकाधाम से लौटे मेवाड़ के यात्रियों ने जब राणा उदयसिंह को मेड़तणी राणी (मीरा) के द्वारका में होने की बात बताई, तो वह चौंक उठे :

"द्वारिका में है मेड़तणी राणी···हमारी भाभी।"

"हां, महाराणा!" एक यात्री ने कहा—"अपनी सखी मियना के साथ द्वारकाधीश के मन्दिर में भजन-कीर्तन करते हुए हमने उन्हें अपनी आंखों से देखा है।'

"हूं—ऊं!" राणा उदयसिंह सोच में पड़ गये। दो-चार क्षण

वाद बोले—"उन्हें आदरपूर्वक वापिस लाने की कोशिश की जायेगी।"

और फिर वह अपने सामन्तों-सरदारों के साथ विचार-विमर्श करने लगे कि कैसे उन्हें वापिस लाया जाय।

उधर मेड़ता में राव जयमल से भी द्वारका से लौटे किसी यात्री ने सूचना देते हुए कहा :

"हमने मीराबाई को द्वारकाधाम में देखा है, राव साहब!"

"मीरा को देखा है!" राव जयमल भी सुनकर चौंक उठे।

"उनके साथ मिथुला बाई भी थी।"

"मिथुला बाई भी थी।"

अपनी लाड़ली बहन और उसकी सहेली का समाचार पाकर स्वभाव से ही कोमल और भक्त हृदय वाले राव जयमल की आंखें भर आईं। कई क्षणों तक वह बोल तक भी न सके। कई क्षणों तक सोचते रहने के बाद बोले :

"उसे वापिस लाना होगा।" फिर कहा—"पर ऐसा करने से पहले चित्तौड़ में राणा-परिवार को सूचित करना आवश्यक है।"

"वह तो है ही, राव साहब!" एक सरदार ने समर्थन किया।

"तो तुम ही चले जाओ!" पर दूसरे ही क्षण विचार बदलते हुए वह फिर बोले—"हम खुद ही जायेंगे। इस बहाने राणा के दर्शन भी हो जायेंगे और उनकी इच्छा का पता भी चल जायेगा।"

अगले ही दिन राव जयमल चित्तौड़ की ओर चल दिये।

जब राव जयमल चित्तौड़ पहुंचे, तो राणा उदयसिंह ने अपनी भाभी मीरा के इस भाई का प्रसन्नता से स्वागत किया। मीरा के द्वारका में होने की बात भी पहले उन्होंने ही बताई।

"उसी प्रसंग में तो सेवा में आया हूं, महाराणा।" राव जयमल ने नम्रता से निवेदन किया—"मैं चाहता हूं, उन्हें वहां से

वापिस लाया जाय। आपकी सहमति हो तो मैं व्यवस्था करूं ?"

"व्यवस्था के बारे में हमने पहले ही सोच रखा है, राव साहब !" राणा उदयसिंह बोले—"आपके और हमारे राजपुरोहित सम्मान के साथ उन्हें वापिस लाने जायेंगे। इनके साथ कुछ खास सामन्त, सरदार और सैनिक भी रहेंगे !"

"आज्ञा दें, तो मैं स्वयं जाने को तैयार हूं।" राव जयमल ने कहा।

"इसकी आवश्यकता नहीं लगती।" राणा बोले—"राजपुरोहित के साथ उन्हें लौट ही आना चाहिए।"

और दो-चार दिन बाद ही मेवाड़ और मेड़ता के राजपुरोहित सामन्तों, सरदारों तथा कुछ सैनिकों के साथ द्वारका की ओर चल दिये, राजरानी मीराबाई को वापिस लाने के लिए।

द्वारकाधाम में मीरा का राजपुरोहित आदि के आने का समाचार जैसे ही मिला, वह अपने आप में सिकुड़ गयीं। उसने मिथुला के द्वारा उन्हें दृढ़ स्वर में कहलवा दिया।

"अब मैं मेवाड़ या मेड़ता कहीं भी नहीं जाना चाहती।"

सुनकर पुरोहित आदि सन्नाटे में आ गये :

उन्होंने मीरा से मिलने की इच्छा प्रगट की। मिलने में मीरा को कोई दुविधा नहीं थी। सो वह उनके सामने आ गयी।

"आप राणा-वंश की राजरानी है।" मेवाड़ के राजपुरोहित ने कोमल स्वर में समझाते हुए कहा—"हमारे महाराणा जी ने वचन दिया है कि वापिस लौट आने पर आपको इच्छापूर्वक जीवन जीने की पूरी सुविधा और स्वतंत्रता रहेगी। मैं राणावंश का राजपुरोहित भी ऐसा ही वचन देता हूं।"

"मेरे लिए सुख-दुख, स्वतंत्रता-परतंत्रता का अब कोई अर्थ

नहीं रह गया, पुरोहित जी !" मीरा ने उत्तर दिया—"जिन बन्धनों को तोड़कर अब इतना आगे बढ़ आयी हूं, अब उनकी ओर मुड़कर न देखने में ही मेरी मुक्ति है।"

"नहीं, बेटी !" मेड़ता के राजपुरोहित ने समझाने का यत्न करते हुए कहा—"तुम्हारे चचेरे भाई राव जयमल भी यही चाहते हैं। तुम मेवाड़ न जाना चाहो, तो न सही, मेड़ता तो तुम्हारा पितृगृह है। वहां तो अपने भक्त भाई के पास तुम महचाहा जीवन जीते हुए रह ही सकती हो।"

मीरा चुपचाप सुनती रही।

"मिथुला बेटी, तुम ही समझाओ न अपनी सहेली को।" मेड़ता के राजपुरोहित ने मिथुला की तरफ देखते हुए कहा।

मिथुला ने एक बार मीरा की तरफ देखा। उसकी मनः-स्थिति समझ मिथुला की आंखें झर-झर झरने लगीं।

"राणा की यह प्रार्थना तो है ही कि आप लौट चलें, आज्ञा भी है।" मेवाड़ के राजपुरोहित ने फिर कहा।

"आज्ञा !" मीरा ने अचकचा कर उनकी तरफ देखा, फिर दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—"मेरे गिरधर गोपाल की आज्ञा है कि मैं उसका चौखट छोड़ और कहीं न जाऊं।"

"क्या—आ ?" मेवाड़ का राजपुरोहित भौंचक्का-सा होकर मीरा की तरफ देखता ही रह गया।

"कह दिया न !" मीरा ने कहा और उठकर चली गयी।

मिथुला भी उसके पीछे हो ली।

दोनों राजपुरोहित एक-दूसरे का मुंह देखने लगे।

कई क्षण यों ही सरक गये।

"अब क्या विचार है, पण्डित ?" मेड़ता के राजपुरोहित ने मेवाड़ के राजपुरोहित की ओर देखते हुए प्रश्न किया।

"महाराणा की आज्ञा है, मेड़तणी राणी को साथ लिये बिना

हम नहीं लौट सकते।"

"पर, कैसे ?"

"जैसे भी हो सके। उस पर दबाव डालकर या उसके सामने धरना देकर।" मेवाड़ के पुरोहित ने कहा—"तब भी न माने तो यहां के राजपुरुषों की सहायता से उसे बलपूर्वक उठवाकर भी हमें साथ ले जाना होगा। महाराणा का ऐसा ही आदेश है। सामन्त, सरदार और सैनिक इसीलिए साथ आये हैं।"

सुनकर मेड़ता का पुरोहित कांप गया।

"बलपूर्वक ले जा पाना सम्भव नहीं होगा, पण्डित।" मेड़ता के पुरोहित ने कहा—"हां, धरना देकर उस पर साथ चलने के लिए दबाव अवश्य डाला जा सकता है।"

"यही सही।" मेवाड़ के पुरोहित ने स्वीकार किया।

मिथुला के माध्यम से मीरा को कहलवा दिया गया :

"या तो वह हम लोगों के साथ मेवाड़ या मेड़ता कहीं भी वापिस चली चलें, या फिर ब्रह्महत्या का पाप उसे भोगना पड़ेगा। हम दोनों ब्राह्मण (राजपुरोहित) तब तक यहां भूखे-प्यासे बैठे रहेंगे, जब तक वह जाने को राजी नहीं होगी। नहीं जायेगी, तो भूखे-प्यासे प्राण दे देंगे।"

मिथुला के मुख से यह सब सुन मीरा का मन भी एक बार कांप गया। पर वह वापिस न जाने के अपने निर्णय पर अटल रही। उसका निश्चय ब्राह्मण को सुना दिया गया। वे भी एक बार तो प्राण जाने के भय से दहल उठे, पर उन्होंने मीरा के द्वार पर भूखे-प्यासे रह कर नियमपूर्वक धरना देना आरम्भ कर ही दिया।

बड़ी विषम स्थिति थी।

दोनों पुरोहितों को निराहार रह धरना देते हुए कई दिन बीत गये। न वे लोग हठ छोडने को तैयार हुए और न मीरा। दोनों ही

पक्ष अपनी-अपनी बात पर अड़े रहे। जब ब्राह्मणों की दशा कुछ बिगड़ने लगी, तो मिथुला ने घबराकर मीरा से कहा :

"लगता है, ब्रह्म-हत्या के पाप से बच पाना अब कठिन है, रानी बहन। मेरा मन तो घबराने लगा है।"

"तो फिर ?" मीरा ने कृष्णलीन आंखों से उसकी ओर देखते हुए प्रश्न किया।

"इस पाप से बचने का, इस कष्ट से मुक्ति पाने का कोई उपाय करो, बहन !" व्याकुल मिथुला ने कहा—"नहीं, मुझसे अब यह सब नहीं सहा जाता।"

"मेरी तरफ से आज से तुम मुक्त हो, मिथुला।" मीरा ने गम्भीर स्वर में कहा—"इस ब्रह्म-कष्ट से छुटकारा पाने के लिए जो भी तुम्हारे जी में आये कर सकती हो।"

"जो जी में आये कर सकती हूं ?" प्रश्नभरी आंखों से एक बार मिथुला ने मीरा की तरफ देखा। वहां दृढ़ता और निश्चय का भाव देखकर उसके चेहरे पर भी दृढ़ता आ गयी। गम्भीर स्वर में बोली—"तो अब मुझे मुक्त होने की आज्ञा दो।"

कहकर मिथुला ने मीरा के चरणों में झुककर प्रणाम किया। आशीर्वाद के लिए मीरा का हाथ अपने आप ही उठ गया।

वहां से बाहर निकल मिथुला समुद्र की ओर चल दी। समुद्र-तट पर पहुच, आंखें बन्द कर उसने पानी में कदम रखा और फिर आगे ही आगे बढ़ती गयी। सहसा एक जोर की लहर आयी और उसके बाद मिथुला कहीं दिखाई नहीं दी। समुद्र की लहरें उसे निगलकर शान्त हो गयीं।

किनारे पर खड़े देख रहे लोग भागे मीरा के डेरे की ओर उसे बताने के लिए।

मिथुला के जाने के बाद मीरा ने भगवान श्री कृष्ण की स्तुति की और फिर हाथ जोड़, खुली आंखों से मूर्ति की ओर देखती

हुई उसी में लीन हो गयी। मिथुला के समुद्र-लीन होने का समाचार देने आये लोगों ने देखा, उसकी निष्प्राण देह की खुली आंखों में भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति का प्रतिबिम्ब झलक रहा था।

सम्वत् 1603 के उस दिन कृष्ण-भक्त मीराबाई कृष्णमय होकर मात्र अपनी कहानी ही वाकी छोड़ गयी।

□□

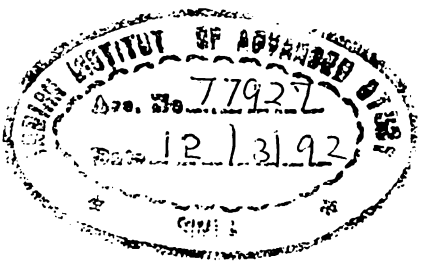

Library IIAS, Shimla
H 028.5 Sh 23 M
00077927